षष्ठ अध्याय

आलोच्य नाटकों में चित्रित समस्याएँ

षष्ठ अध्याय

आलोच्य नाटकों मे चित्रित समस्याएँ

6.1 प्रस्तावना :-

गुफाओं में रहनेवाले आदिम मानव से लेकर आधुनिक मानव तक सभी 'समस्या' जैसे छोटे शब्द से जुड़े हुये है। कोई इससे पलभर भी छुटकारा पा नहीं सकता। समस्या हमारे जीवन का एक अंग बन गया है। सभी पर उसका शासन चल रहा है। 'समस्या' इस शब्द को जानना, समझना और समझाना एक पहेली-सी बन जाती है।

6.2 समस्या अर्थ :-

चित्रकाव्य के सात भेदों से 'समस्या' भी एक है, इसका लक्षण निरूपित करते हुए पुराणकार ने कहा है -

> ''सुशिलष्टवद्यमेंक यन्नानाश्लोकोश निर्मितम
>
> सा समस्या परस्या ऽऽ त्मपस्यो: कृति संकरात।''[1]

संस्कृतचायों ने समस्या का केवल यही अर्थ लगाया है कि ''समस्या - वह है - जिसमें अपनी एवं दूसरे की रचना का संगठन अथवा समन्वय हुआ हो।''[2] हिन्दी विश्वकोषकार ने इस अर्थ के साथ-साथ समस्या का अर्थ - ''संघटन, मिश्रण, मिलने की क्रिया, कठिन अवसर या प्रसंग''[3] लिया है। मानक अंग्रेजी हिन्दी कोशकार ने - ''उलझन, कठिन प्रश्न, पहेली, दुर्बोध बात, व्यूह, प्रहेलिका'' बताया है। करुणापति त्रिपाठी ने भी - ''कठिन अवसर या प्रसंग'' के ही अर्थ में स्वीकार किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समस्या एक उलझन एवं कठिन अवसर या प्रसंग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। समस्याओं को जानने के लिए समग्र व्यापक दृष्टि की आवश्यकता

है। समस्या एक जटिल प्रक्रिया है। एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है। एक समस्या द्वारा अनेक समस्याओं का उद्भावक होता है। मानो रक्तबीज, राक्षस जैसा वरदान उन्हें प्राप्त हो गया है।

6.3 'सिन्दूर की होली' के अंतर्गत समस्या :-

प्रस्तावना -

'सिन्दूर की होली' मिश्रजी का चौथा समस्या प्रधान एक प्रौढ नाटक है; जिसकी रचना 1934 में हो गयी है। इसमें समाजगत और व्यक्तिगत दोनो प्रकार की समस्याओं को उभारा गया है। सामाजिक समस्या के अंतर्गत जमीनदारों से उत्पन्न पारस्परिक कलह, अधिकारियों का रिश्वत लेना, न्याय की समस्या और अर्थलोलुपता की समस्या आदि को नाटककार ने लिया है। व्यक्तिगत समस्या के अंतर्गत यौन समस्या, स्वच्छन्द प्रेम की समस्या, विधवा विवाह की समस्या और चिरंतन नारीत्व की समस्या का चित्रण है। वे सभी समस्याएँ वर्तमान देश-काल के ज्वलंत समस्याएँ है। इन सभी समस्याओं का समाधान मिश्रजी ने बुध्दिवादी स्तर पर किया है।

अत: 'सिन्दूर की होली' की समस्याएँ निम्न प्रकार से हैं -

6.3.1 पट्टीदारों के कलह की समस्या

6.3.2 कानूनद्वारा सुरक्षा की समस्या

6.3.3 चिरन्तन नारीत्व की समस्या

6.3.4 विवाह की समस्या

6.3.5 स्वच्छन्द प्रेम की समस्या

6.3.6 अन्तर्द्वंद्व अथवा मानसिक संघर्ष की समस्या

6.3.7 रोग के उपचार की समस्या

6.3.8 बुध्दिवादी की समस्या

6.3.9 यौन समस्या

6.3.10 रिश्वतखोरी की समस्या

6.3.1 पट्‌टीदारों के कलह की समस्या -

नाटक के आरंभ में ही पट्‌टीदारों के कलह की समस्या उभरती है, जो पारविारिक स्तर पर गंभीर स्वरूप धारण करती है। जमीनदारी से उत्पन्न कलह और हत्याओं की समस्या की नाटककार ने जमीनदार भगवन्तसिंह और रजनीकान्त के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भगवन्तसिंह की अत्याचारी प्रवृत्ति के बारे में मुरारीलाल कहते हैं - ''मैं खूब जानता हूँ, भगवन्त बड़ा जालिम है। लाखों रूपयें, रैयत को लूटकर जमा कर लिए हैं। अभी तक आनरेरी मॅजिस्ट्रेट था .... इस साल रायसाहब भी हो गया है। उधर का सारा इलाका उनके रोब में है। जो चाहेगा, कर लेगा।''[4]

इससे स्पष्ट होता है कि रायसाहब भगवन्तसिंह समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। अपने भतीजे रजनीकान्त के स्वतंत्र विचारों एवं क्रांतिकारी व्यवहारों को अपने लिए बाधक जनक समझता है। रजनीकान्त उसके सामने बराबर के ठाठ से रहता है। लगान-बंदी कर रहा है। बाजारों में कपड़ों की होली जलाता है। कहार उसके यहाँ भी पानी भरे और हली-हुकमत उसे भी मिले यह बराबरी करने जैसा है। इसलिए एक ही जंगल में दो शेर का रहना भगवन्तसिंह को चूभता है। वह कहता है - ''पट्‌टीदार और दाल तो गलाने की चीज होती हैं। दाल गल जाने पर मीठी होती है और पट्‌टीदार गल जाने पर काबू में रहता है। अपनी जिंदगी में दो लाख रूपये की जमीन मोल ली मैंने और एक लाख रूपये नकद जमा किया, उसकी मजाल की मेरा जबाब दे।''[5] इसलिए भगवन्तसिंह रजनीकान्त की हत्या करने का दृढ निश्चय करता है और उसके हिस्से पर कब्जा करना चाहता है। तभी तो वह डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल को रिश्वत देता है, ताकि वह कानून से छूट सके। इसी में वह अपनी इज्ञत एवं प्रतिष्ठा समझता है।

इस प्रकार जमीनदारी के शोषण और अत्याचार की समस्या को नाटककार ने यथार्थ रूप से चित्रित किया है। जिसमें पट्टीदारों की कलह ही समस्या उभर आती है।

6.3.2 कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या :-

लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा लिखित 'सिन्दूर की होली' इस समस्या नाटक में यह दिखलाया है कि पैसे देकर या रिश्वत देकर न्याय खरीदा जाता है।

मिश्रजी ने आज की वर्तमान समस्या को प्रस्तुत किया है। आज का कानून देखकर भी देख नहीं सकता। अपने आँखों पर झूठ की पट्टी बाँध लेता है। कानून सबूत के बलपर न्याय करता है, तो कानून के रखवाले धन के बल पर न्याय करते है। इन दोनों के बीच निरपराध रजनीकान्त की हत्या की जाती है। मिश्रजी कानून पर व्यंग्य करते हुए लिखते है कि, 'सजा उसको नहीं दी जाती जो अपराध करता है, सजा तो केवल उसको दी जाती है, जो अपराध छिपाना नहीं जानता। बस... यही कानून है।'[6] कानून के रक्षक डिप्टी कलक्टर भक्षक के रूप में सामने आते है। उन्हें रजनीकान्त की हत्या की चिन्ता नहीं है, बल्कि धन की लालसा दिखायी देती है। मुरारीलाल यह भी स्पष्ट कर देता है कि वह रिश्वत नहीं लेता तब भी छूट जाता क्योंकि कानून वास्तव में मानवीय अधिकारों की रक्षा नहीं करता। भगवन्तसिंह रजनीकान्त की हत्या करने का साहस इसलिए करता है क्योंकि उसे पता है कि रूपयों के बलपर न्याय खरीदा जा सकता है। आज की न्याय प्रणाली सबूतों पर आधारित है और गवाह तो रूपयों के बलपर बिक जाते है। जिस प्रकार मुरारीलाल को पैसे देकर भगवन्तसिंह कानून के पंजों से छूटता है उसी प्रकार वह अन्य गवाहों को भी खरीद सकता है। उसका कुछ भी कानून बिगाड़ नहीं सकता। इस प्रकार आज का कानून देखकर भी अंधा हुआ है। अत: इस समस्या की वजह से और भी कितनी समस्याओं का निर्माण हो जाता है। उदाहरण के तौर पर पट्टीदारों के कलह की समस्या ही न्याय की समस्या को जन्म देती है। भगवन्तसिंह के उदाहरण से नाटककार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज कानून के द्वारा निर्दोष मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती।

6.3.3 चिरंतन नारीत्व की समस्या -

'सिंदूर की होली' की प्रधान समस्या चिरन्तन नारीत्व की है। "चिरंतन नारीत्व की समस्या अर्थात नारी की प्रकृति का वास्तविक रूप, स्वच्छंद प्रेम, जिसमें नारी स्वातंत्र्य की दुहाई दी जाती है अथवा समाजानुमोदित मर्यादित विवाह, जिसमें सामाजिक मर्यादाओं के अनुरूप नारी को अपने मन की अपेक्षा समाज की इच्छा के अनुकूल समर्पण करना पड़ता है।"[7]

चिरंतन नारीत्व की समस्या का विवेचन करने के लिए नाटककार ने दो पात्रों की सृष्टि की है। मनोरमा और चंद्रकला इस नाटक के आधुनिक नारी पात्र हैं। मनोरमा और चंद्रकला दोनों उच्च शिक्षित नारी होकर भी आक्रांत हैं। मनोरमा की दृष्टि से समाज का आदर्श श्रेष्ठ है, तो चंद्रकला नारी के स्वच्छंद प्रेम एवं यथार्थ को महत्त्व देती है। चंद्रकला सामाजिक मर्यादाओं की उपेक्षा कर स्वयं की अनुभूति को महत्त्व देती है। इस तरह एक रुढ़िवादी है; तो दूसरी उसकी उपेक्षा करती है।

मनोरमा बाल विधवा है। आज बीस साल बीत गये उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। वह समाज के आदर्श पर चलना चाहती है। वह जानती है कि विधवा विवाह करने से समस्या नहीं मिट सकती बल्कि तलाक की समस्या निर्माण होती है। मनोरमा की दृष्टि से पुरुष और स्त्री एक दूसरे के रोग के समान है। नारी त्याग और करुण की मूर्ति है। सदैव उसे पुरुष की गुलामी सहनी पड़ती है। तभी तो मनोरमा कहती है - "पुरुष के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है स्त्री को। स्त्री जीवन का सबसे सुन्दर और सबसे कठोर सत्य यही है। स्त्री इसलिए दु:खी है और पुरुष इसी को स्त्री का अधिकार समझता है और इसलिए पुरुष और स्त्री के अधिकारों की अलग-अलग पैमाइश हो रही है।"[8]

चंद्रकला प्रथम दर्शन में ही रजनीकान्त से एकनिष्ठ हो जाती है। और उसके बेहोश स्थिति में अपने सिर में सिन्दूर भर लेती है। स्वयं वैधव्य को धारण करके यथार्थ को महत्त्व देती है। वह कहती है - "मेरे भीतर आज चिरंतन नारीत्व का उदय हुआ है। मेरी चेतना आज मेरे चारों ओर

फैल रही है और तुम कहती हो मुझे उन्माद हो रहा है। मैं आज अपने पैरों पर खड़ी हो रही हूँ... मुझे किसी दूसरे पुरुष की सहायता की जरुरत नहीं। रोटी और वस्त्र... मेरी शिक्षा इतनी हो चुकी है कि मैं अपना प्रबंध कर लूँगी। कोई चिन्ता नहीं है। मेरा वैधव्य अमर रहे।"[9] इस तरह आधुनिक नारी एक ओर पुरुष की लोलुपता से घृणा करती है, वहाँ दूसरी दृष्टि और प्रथम दर्शन में ही अनुरक्त हो जाती है। इस प्रकार वह उतनी ही निर्बल और भावुक लगती है जैसी कि आज से सौ वर्ष पहले थी। इस नाटक के दोनों नारी पात्र मनोरमा और चंद्रकला भावुकता से बुध्दिवाद का वरण करती है। चंद्रकला की दृष्टि से मनोरमा की मजबूरी पहले सामाजिक और फिर मानसिक हुई। लेकिन चंद्रकला की मजबूरी प्रारंभ से ही मानसिक हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में नारी समस्या बड़ी जटिल है। इसे सब जानकर भी अंजान हो जाते हैं। नारी की ओर देखने की पुरुष की वासना की क्षुद्र प्रवृत्तियाँ हैं। इसी कारण नारी को महत्त्व नहीं मिलता। आज की नारी आधुनिक और शिक्षित होते हुए भी स्वतंत्र नहीं है। फिर भी प्रकृति और प्रवृत्ति की दृष्टि से इतना भिन्न होने पर भी मनोरमा और चंद्रकला ने एक महत्वपूर्ण समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। समाज में स्त्रियों को रोटी और कपड़े के लिए पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है लेकिन मनोरमा और चंद्रकला में यह मजबूरी नहीं है। उनकी शिक्षा इस मिठ्ठी में उन्हें अपने पैरों पर खड़ी होने के योग्य बनाती है। वह दोनों भी किसी पर निर्भर नहीं होना चाहती। इस तरह मनोरमा और चंद्रकला अपने चिरंतन नारीत्व के लिए वैधव्य का वरण करने के उपरांत पुनः विवाह नहीं करना चाहती। चंद्रकला अपने स्थायी प्रेम के लिए तों मनोरमा सामाजिक आदर्श को शाश्वत रखने के लिए स्वयं अपना-अपना मार्ग प्रशस्त करती है।

6.3.4 विवाह की समस्या -

मिश्रजी विवाह को एक सामाजिक व्यवस्था मानते हैं। इसमें प्रेम के क्षेत्र में संदेह का उन्मूलन हो जाता है। इस सामाजिक बंधन के कारण फिसलने का अवसर कम होता है। अतः प्रेम

अधिक घनिष्ठ एवं दृढ होता है। इस बारे में इब्सन ने लिखा है - "यदि तुम विवाह करना चाहते हो तो प्रेम में मत पड़ो और यदि प्रेम करते हो तो प्रिय से अलग हो जाओ।"[10] इस तरह मिश्रजी ने इसी प्रणाली को अपने इस नाटक में अपनाया है। मिश्रजी पर पाश्चात्य लेखक इब्सन का ही प्रभाव पड़ा था। अतः मिश्रजी ने उनकी इसी प्रणाली को अपने नाटक में स्वीकारा है।

चंद्रकला के माध्यम से नाटककार ने परंपरागत विवाह पध्दति का विरोध किया है। चंद्रकला के पिता मुरारीलाल उसका विवाह मनोजशंकर से करना चाहते है किन्तु वह पिता के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर स्वतंत्र निर्णय लेती है। वह मरणासन्न रजनीकान्त के हाथों से अपनी माँग भरवाकर स्वयं वैधव्य को गले लगाती है। वह परंपरागत विवाह का विरोध करती है; क्योंकि उन्होंने प्रथम दर्शन में ही रजनीकान्त से प्रेम किया था। यहाँ चंद्रकला के रूप में भारतीय आदर्श नारी का रूप दिखलाया गया है। चंद्रकला जैसी स्थिति व्यावहारिक रूप में नहीं दिखाई देती है। चंद्रकला जैसी नारी का चित्रण साहित्य में हमें आदर्श लगता है, परन्तु वास्तविक जगत में इसका स्वीकार करना आसान नहीं है। इस प्रकार मिश्रजी ने चंद्रकला का चित्रण एक आदर्श नारी के रूप में किया है। वह परंपरागत विवाह का विरोध करती हुई कहती है - "विवाह तो मेरा भी हो गया। हजार-दो-हजार मंत्र और श्लोक न पढ़े गये। यही न?"[11] इस तरह चंद्रकला मानसिक वर्ग को सामाजिक रुढ़ियों और वैवाहिक बाह्य परंपराओं को श्रेष्ठ मानती है।

मनोरमा के माध्यम से मिश्रजी ने परंपरागत विवाह पध्दति को स्वीकार किया है। मनोरमा का विवाह आठ साल की आयु में हुआ और दो वर्ष के बाद विधवा हो गयी। आज अठारह साल की युवती के रूप में मुरारीलाल के यहाँ आश्रय पाती है। मुरारीलाल की वासनात्मक दृष्टि उस पर रही है। मनोजशंकर और मनोरमा एक दूसरे पर अनुरक्त है। मनोरमा का विवाह सामाजिक तथा बाह्य विधान के नियोजन की गाथा है। इसे ही वह अपने वैधव्य को अपनी संस्कृति का परम आदर्श मान बैठती है। यहाँ पर भी मिश्रजी ने आदर्श भारतीय नारी के रूप में मनोरमा का

चित्रण किया है। मनोरमा अपनी यह भावना स्पष्ट करती है - "अगर तुम मेरे प्रेम का अर्थ समझ सको .... मुझे उसका अवसर दो। मैं तुम्हें अपना दूल्हा तो नहीं बना सकती लेकिन प्रेमी बना लूँगी।"[12] इस तर मनोरमा मनोजशंकर को प्रेमी के रूप में स्वीकार करती है। उनका यह प्रेम निष्कलंक है।

इस तरह मनोरमा विवाह के मूल में बाह्य विधानों को प्रमुख मानती है, जो चंद्रकला समाज की स्वीकृति की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावनाओं एवं मानसिक वरण को श्रेष्ठ समझती है। इस तरह 'सिन्दूर की होली' में मुख्य समस्या विवाह की है। मनोरमा एवं चंद्रकला के माध्यम से मिश्रजी ने हृदय और भावना को सुंदर समन्वय प्रस्थापित किया है। मिश्रजी ने पाश्चात्य संस्कृति को अपनाते हुए उन्होंने कहीं भी भारतीयता का त्याग नहीं किया। 'सिन्दूर की होली' की मनोरमा और चंद्रकला शिक्षित होने के कारण पाश्चात्य संस्कृति का उनपर प्रभाव है। इसी कारण वह स्वच्छंद प्रेम करती है परन्तु वह आदर्श भारतीय नारी भी दिखाई देती है, जिसके कारण वैधव्य धारण कर एक सामाजिक आदर्श स्थापित करती है।

इस तरह नाटककार ने विवाह समस्या को प्रस्तुत करते हुए एक ओर सामाजिक आदर्श को महत्व दिया है, तो दूसरी ओर वैयक्तिक प्रेम-विवाह को अपनाया है।

6.3.5 स्वच्छंद प्रेम की समस्या :-

मिश्रजी ने नारी के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्म अवलोकन किया है। 'सिन्दूर की होली' में स्वच्छंद प्रेम के साथ नैतिक पतन की भी रक्षा की है। चंद्रकला का प्रेम स्वच्छंद है। वह सामाजिक मर्यादाओं की पूर्ण उपेक्षा कर स्वयं की अनुभूति को महत्त्व देती है। वह अपने प्रेम के खातिर मरणासन्न रजनीकान्त के हाथों अपने माँग में सिन्दूर भरवाकर सिन्दूर की होली खेलती है और वैधव्य को धारण करती है। यहाँ मिश्रजी ने स्वच्छंद प्रेम दिखलाया है। पिता की इजाजत के बावजूद चंद्रकला मरणासन्न रजनीकान्त के हाथो से अपनी माँग में सिन्दूर भरवा लेती है। वह जो

रजनीकान्त से प्रेम करती थी, वह स्वच्छंद प्रेम था। पाश्चात्य प्रभाव और शिक्षा का प्रभाव चंद्रकला पर होने से उसमें स्वच्छंद प्रेम की भावना जाग उठी है। अत: चंद्रकला में पाश्चात्य प्रभाव दिखायी देता है। परन्तु आगे जीवन में वैधव्य को अपनाना यह भारतीयता का प्रभाव दिखायी देता है। इस तरह चंद्रकला में भारतीय और पाश्चात्य दोनों भी संस्कृति का प्रभाव दिखायी देता है।

मनोरमा भी मनोजशंकर से स्वच्छंद प्रेम करती है। वह मनोजशंकर को प्रेमी के रूप में मानती है। वह दोनों एक दूसरे से शादी तो नहीं करेंगे लेकिन प्रेमी अवश्य रहेंगे। यही स्वच्छंद प्रेम है। स्त्री तो प्रेम और करुणा की मूर्ति होती है। इस बारे में मनोजशंकर कहता है - ''प्रेम करना विशेषत: स्त्री के लिए कभी बुराई नहीं .... स्त्री जाति की स्तुति केवल इसीलिए होती है कि वे प्रेम करती है .... प्रेम के लिए ही उनका जन्म होता है ... स्त्री चरित्र की सबसे बड़ी विभूति उनका सबसे बड़ा तत्व प्रेम माना गया है और उस पर भी यह उसका पहला प्रेम है। उस में बुराई कहाँ है। प्रेम वकील की राय लेकर ... जज से अधिकार पत्र लेकर नहीं किया जाता। जो बात स्वत: स्वभाव है, प्रकृति है ... वह तो चरित्र का गुण है, अवगुण नहीं।''[13]

इस प्रकार नाटककार ने प्रेम की स्वच्छंदता को इतना महत्त्व नहीं दिया कि उससे सामाजिक मर्यादा पर कोई आँच आये। उनकी दृष्टि से मन की स्वच्छंद उड़ान एक मानसिक व्यभिचार है और यह मानसिक व्यभिचार कई गुना शारीरिक व्यभिचार से भयंकर होता है। नाटककार को लगता है कि स्वच्छंद प्रेम शारिरिक भूख है। अत एवं इसकी पूर्ति के साथ स्वच्छंद प्रेम का अस्तित्व शेष नहीं रहता। विवाह की सामाजिक व्यवस्था से प्रेम की शक्ति मिलती है। बाह्य विधानों के कारण प्रेम में संदेह का पूर्ण उन्मूलन हो जाता है। संदेहहीन और सामाजिक मर्यादा से आबध्द प्रेम में घनिष्ठता होती है। अत: जीवन की विषम स्थितियों में भी उसके टूटन का भय नहीं रहता।

इस तरह मिश्रजी ने स्वच्छंद प्रेम की समस्या दोनों रूपों में व्यक्त हुई है। प्रेम का तत्त्व मनोरमा और चंद्रकला के चरित्रों में व्यक्त हुआ है। फर्क इतना ही है कि मनोरमा का सामुहिक

और चंद्रकला का वैयक्तिक रूप में। मनोरमा भारतीय अध्यात्म की सृष्टि है और चंद्रकला पाश्चात्य रोमांस का प्रतीक है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य का सुंदर सामंजस्य हुआ है। लेखक ने नाटकों में विवाह और प्रेम को एक दूसरे का पूरक न मानकर पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से अलग-अलग स्थान दिया है।

6.3.6 अन्तर्द्वंद्व अथवा मानसिक संघर्ष की समस्या -

समस्या नाटकों में वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं का निरूपण होता है। अतः इन समस्याओं के साथ द्वंद्व तथा संघर्ष की समस्या भी निहित रहती है। समस्या नाटकों में बाह्य द्वंद्व की अपेक्षा अन्तर्द्वंद्व तथा मानसिक संघर्ष की प्रधानता रहती है। संक्षेप में हम कह सकते है कि समस्या नाटकों का प्राण ही अन्तर्द्वंद्व होता है। इस बारे में डा.उमाशंकर सिंह ने लिखा है - ''समस्या नाटकों का संघर्ष बौध्दिक होता है। उसमें वैचारिकता का प्राधान्य होता है। स्वच्छंदवादी नाटकों का संघर्ष कायिक होता है, समस्या नाटकों का मानसिक। यद्यपि आन्तरिक संघर्ष की अपनी मर्यादा है, बाह्य संघर्ष से नाटक में गतिशीलता और नाटकीयता आती है। मिश्रजी समस्या नाटकों की प्रायः सभी घटनाएँ परोक्ष में घटती है।''[14]

मिश्र जी का 'सिन्दूर की होली' नाटक अन्तर्द्वंद्व प्रधान नाटक है। बाह्य द्वंव्द सिर्फ रजनीकान्त की हत्या एवं सामाजिक रूढ़ियों को लेकर है। इस नाटक के पात्र मानसिक भावों का अन्तर्द्वंद्व लेकर सामने आते हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्र बुध्दिवादी हैं। इस नाटक के अन्तर्गत मुरारीलाल, माहिरअली, मनोजशंकर, चंद्रकला एवं मनोरमा इन पात्रों के भीतर संघर्ष का चित्रण हुआ है।

नाटक के आरंभ में ही मुरारीलाल अपने अन्तर्द्वंद्व से पीड़ित दिखलाया है। आठ हजार रुपयों के खातिर मुरारीलाल ने मनोजशंकर के पिता की हत्या की थी। यह रहस्य वे छुपाना चाहते हैं। वे कहते हैं - ''मनोज अगर जान जायगा कि उसके पिता ने मेरी वजह से आत्महत्या की थी ...

इस वर्ष का समय निकल गया ... अभी तक तो बात छिपी हुई है। लेकिन अगर किसी दिन खुल गयी तो मेरे मुँह पर स्याही पुत जायगी और फिर मैं किसी काम का नहीं रहूँगा।''[15] इसलिए तो मुरारीलाल मनोजशंकर को उच्च शिक्षा दिलाकर अपना दामाद बनाना चाहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपने किये का अंत में प्रायश्चित करके मन को शांति मिलने के लिए प्रयास करता है। इतना होने पर भी मन में अंतर्द्वंद्व चलता ही रहता है वह पूरी तरह से मिट नहीं सकता।

मुरारीलाल का दूसरा अंतर्द्वंद्व रजनीकान्त की हत्या को लेकर है। उनके स्वार्थ के कारण ही रजनीकान्त मारा जाता है। उनकी लोभवृत्ति जहाँ असत की ओर प्रेरित करती है, वहाँ उनके हृदय में दया का भाव भी निहित रहता है। उनके अन्तर्मन का संघर्ष माहिरअली के प्रति निम्न कथन में स्पष्ट हो जाता है - ''हूँ जरुर ऐसी बात थी। उसके चेहरे से शैतानी टपक रही थी और मालूम होता है, उसकी भी राय से वह मारा गया होगा। मनुष्य का स्वार्थ .... इसके लिए आदमी क्या नहीं कर डालता ? इधर देखो मेरे रोये फल गये हैं ... जैसे सिर में चक्कर आ रहा है ... क्या समझते हो अगर वह मारा गया तो उसमें मेरी वजह ...।''[16]

माहिरअली ने भी मनोजशंकर की हत्या में सहयोग दिया था। वह बार-बार इस अपराध के लिए पश्चातप प्रकट करता है। इसीलिए तो वह रजनीकान्त की हत्या नहीं करना चाहता। वह इसके लिए मुरारीलाल को रोकना चाहता है; किन्तु उसका सब कहना व्यर्थ हो जाता है। मुरारीलाल के प्रति स्वामिभक्ति तथा कानून के भय से वह मनोजशंकर को उसके पिता की आत्महत्या का रहस्य नहीं ब ता देता। किंतु यह रहस्य उसके मन को सदैव कूढ़ता रहता है। यह सत्य है कि मनुष्य ने किये हुये पाप कर्म भूलाने की कितनी भी कोशिश करे, लेकिन पापकर्मों की याद उन्हें बार-बार होती है और अन्त में पश्चाताप हो जाता है। इसी प्रकार माहिरअली की भी अवस्था हो चुकी है। पाप की स्मृति से डर जाता है और वह विक्षिप्त सा होता है और इसी विक्षिप्तावस्था में शैतान और भूत के दृश्य दिखायी देने लगते है।

मनोजशंकर का हृदय भी तीव्र अन्तर्वेदना तथा सन्देह से भरा हुआ है। आत्मघाती पिता का पुत्र होने की हीन-ग्रंथी से वह ग्रस्त है। उसे यही संदेह सताता रहता है कि उसके पिता ने किस कारण आत्महत्या की थी। उसकी दृष्टि से 'आत्मघाती पिता के पुत्र के लिए संसार में सम्मान कहा....।'[17]

इस प्रकार मनोजशंकर का अन्तर्द्वद्व उसे नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक उसके मन को घायल बनाये रखता है।

मनोरमा बालविधवा है। अब वह चंद्रकला को चित्रकला सिखाने के लिए मुरारीलाल के घर आती है। मनोरमा अन्र्तमन से मनोज के साथ आत्मीयता को महसूस करती है। किन्तु अपने वैधव्य के कारण वह अपनी चित्रकला में मन लगाती है, उसमें भी वह असफल रहती है। अपने मानसिक संघर्ष का निरूपण सामाजिक आदर्श में स्थापित करती है।

चंद्रकला भी भावुकता में आकर वैधव्य को धारण करती है और मानसिक संघर्ष का शिकार हो जाती है। चंद्रकला में दो रूपों में अन्तर्द्वद्व दिखायी देता है। एक ओर प्रेम का द्वंद्व तो दूसरी ओर विवाह की समस्या का। वह प्रेम को यथार्थ मानकर उसे प्रथम महत्त्व देती है तो दूसरी ओर प्राचीन विवाह परंपरा का खंडन करती है। वह कहती है - ''विवाह तो मेरा भी हो गया। हजार-दो-हजार आदमी भोजन न कर सके, दस-बीस बार शंख न बजा, थोड़े मंत्र और श्लोक न पढ़े गए यही न?''[18]

इस तरह प्राचीन संस्कारों एवं बौध्दिकता तथा व्यक्ति और सामाजिक रूढ़ियों का द्वंद्व को मिश्रजी ने प्रस्तुत किया है। इस नाटक के सभी पात्र प्रारंभ से लेकर किसी-न-किसी मानसिक अर्न्तद्वंद्व से आत्मपीड़ित है। इन पात्रों में क्रियाशीलता की कमी है। अतः नाटककार ने पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण बड़ी ही सूक्ष्मता से किया है।

6.3.7 रोग के उपचार की समस्या -

लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को महत्त्व देते हुए रोग के उपचार की समस्या प्रस्तुत की है। किसी प्रकार के रोग के कारणों की समुचित छानबीन करने के पहले डाक्टर को बुला लेना श्रेयस्कर नहीं है। इस नाटक में लेखक ने डाक्टर चिकित्सा पर व्यंग्य किया है क्योंकि डाक्टर केवल शारीरिक चिकित्सा से परिचित हैं और आजकल इस जगत में ''अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विक्षोभ के कारण होती है।''[19] परन्तु आजकल के डाक्टर प्रत्येक बीमारी की शारीरिक दवा करते हैं। इसी विषय को लेकर लेखक ने डाक्टर की चिकित्सा पध्दति पर व्यंग्य किया है।

इस नाटक में चंद्रकला मानसिक व्यथा से पीड़ित है। नाटककार ने प्रसंग रूप में चंद्रकला के इलाज के लिए डाक्टर को उपस्थि त किया है। डाक्टर दवाइयों और इंजेक्शनों से चंद्रकला का रोग दूर करना चाहता है। सत्य तो यह है कि चंद्रकला मानसिक व्यथा से पीड़ित होने के कारण उसे मानसिक सलाह की ही जरुरत है। शारिरिक लक्षण न दिखाई देने से उन्हें लगता है चंद्रकला की हृदय की धड़कन किसी भी क्षण बंद हो सकती है। इसलिए शरीर में दवा ड़ालने की सोचते हैं। तब मनोजशंकर उन्हें कहता है - ''इसका मतलब कि आप उसके शरीर में रोग पैदा करना चाहते हैं। अब तक रोग रहा या नहीं, लेकिन अब जरूर हो जाना चाहिए।''[20] अत: मानसिक रोग निदान ज्ञान के बिना शारीरिक चिकित्सा करना अपूर्ण होता है और कभी-कभी वह घातक भी सिध्द होती है।

रोग के उपचार की समस्या के विवेचन द्वारा नाटककार ने एक ओर समाज का ध्यान मानसिक बीमारियों की सम्यक चिकित्सा की ओर आकर्षित किया है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक उपलब्धि इस दृष्टि से अपूर्ण और असमर्थ हैं। अत: मानसिक रोग के कारणों का पता लगाना अत्यावश्यक होता है। डाक्टर के प्रसंग में नाटककार ने प्राकृतिक चिकित्सा पध्दति के महत्त्व का

प्रतिपादन किया है। मनोजशंकर कहता है - ''मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में आज से कहीं अधिक स्वस्थ था .... इसलिए कि तब डाक्टर न थे। मनुष्य था, और शक्ति और जीवन का केन्द्र प्रकृति थी। स्वास्थ के कृत्रिम साधनों और बोतल की दवाओं ने स्वास्थ की जड काट दी। स्वास्थ तो आप लोगों की आलमारियों में बंद है .... लेकिन यह बहुत दिन नहीं चलेगा। प्रकृति अपना बदला लेगी .... । प्रकृति के रास्ते पर लौट आना ही रोग होना दोनों बराबर है।''[21]

मनोजशंकर चंद्रकला को घूमाने ले जाता है। इस प्राकृतिक इलाज से चंद्रकला ठिक हो जाती है। इस तरह मनोज चंद्रकला की चिकित्सा प्रणाली में सफल हो जाता है। इसतरह नाटककार ने नाटक में रोग के उपचार की समस्या को सूक्ष्मता एवं सहजता से स्पष्ट किया है और आज की रोग की चिकित्सा प्रणाली पर व्यंग्य किया है। सच तो यह है कि आजकल के डाक्टर लोगों को व्यक्ति के बीमारियों का योग्य निदान न होने के कारण ठिक तरह से इलाज नहीं हो पाता है। यही आज की वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या है।

6.3.8 बुध्दिवादी की समस्या -

'सिन्दूर की होली' समस्या नाटक का आधार बुध्दिवाद एवं तर्कशीलता है। इस नाटक के सभी पात्र बुध्दि और तर्क का आश्रय लेते हैं। मिश्रजी ने भी नाटक बुध्दिवाद से प्रेरित होकर लिखे हैं। मिश्रजी के नाटकों की समस्याएँ बौध्दिक व्यक्ति की समस्याएँ हैं।

इस नाटक के अंतर्गत चंद्रकला और मनोरमा दोनों शिक्षित, बुध्दिवादी पात्र हैं। चंद्रकला शिक्षित होने के कारण ही भावुकता के आवेग में वैधव्य का वरण करती है और अपने रोग को बढ़ा देती है। अपने तर्क से पारंपरिक रुढ़ीयों का खंडन करके स्वयं के वैधव्य को सार्थक करती है। प्रेम की कसौटी पर तोलती है। प्रेम को अधिक महत्त्व देती है। चंद्रकला ने अपनी माँग में सिन्दूर भरकर यह दिखलाया है कि रुढ़ियों का जो आदर्श है, उससे यथार्थ (जीवन का) महत्त्वपूर्ण होता है। चंद्रकला अपने जीवन में यथार्थ को महत्व देना चाहती है जो सत्य है। वह कहती है -

"''प्रेम दो - चार से नहीं हो सकता और फिर अब प्रथम दर्शन में प्रेम का समय भी नहीं रहा।''[22] चंद्रकला मरणासन्न रजनीकान्त के हाथ से अपनी माँग में सिन्दूर भर लेती है। चंद्रकला का यह माँग में सिन्दूर भरना बुध्दिवादी होने के कारण ही है। मिश्रजी ने उसकी इस मन:स्थिति पर भारतीय अध्यात्मवाद का आवरण चढ़ाकर अपनी दृष्टि में उसे उदात्त और आज के प्रगतिशील जीवन दर्शन से उस निश्चेष्ट एवं मृतवत बना दिया है।

मनोरमा बालविधवा है। वह विधवा विवाह को समाज के लिए दूषण मानती है। मनोजशंकर से प्रेम होते हुए भी उसे प्रेमी बनाना स्वीकार करती है किंतु पति के रूप में स्वीकार नहीं करती। बुध्दिवादी होने के कारण वह विधवा विवाह का खंडन बुध्दिवाद के रूप में करती है - ''विधवा विवाह हो रहा है ..... लेकिन वैधव्य कहाँ मिट रहा है? समाज इस आग को बुझा नहीं सकता, इसलिए उसे अपने छज्जे से उठाकर अपनी नींव में रख रहा है। .... अभी तक तो केवल वैधव्य की समस्या थी .... अब तलाक की समस्या भी आ रही है।''[23] इस नाटक के माध्यम से लेखक ने सामाजिक रूढ़ियों की ओर संकेत किया है। यह जो नाटककार ने स्पष्टीकरण किया है यह सच लगता है। मनोरमा की दृष्टि में विधवा का आदर्श समाज के लिए गौरव की चीज है, क्योंकि इसके भीतर कल्पना है, साधना है, त्याग है, तपस्या है।

इस प्रकार चंद्रकला बुध्दिवादी के कारण यथार्थ को महत्त्व देती है तथा उसपर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। मनोरमा बुध्दिवादी होकर भी दूसरा विवाह नहीं करना चाहती और भारतीय संस्कृति के आदर्श को महत्त्व देती है।

'सिन्दूर की होली' में लेखक ने सत्य की अभिव्यक्ति से मानसिक संतोष तथा समस्याओं का बुध्दिवादी हल लेखक ने बड़े कौशल के साथ प्रतिपादित किया है।

6.3.9 यौन समस्या -

मिश्रजी अपने नाटक में यौन समस्या को प्रमुख स्थान दिया है। उनके मतानुसार पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित हमारा भारतीय समाज उपरी तौर से आधुनिक बन जाता है लेकिन अपनी जन्मजात संस्कृति को छोड़ने में प्राय: असमर्थ रहता है। अत: आज की नारी मानसिक रूप से इतनी दुर्बल और भावुक है, जितनी कई सौ वर्ष पहली थी।

अंग्रेजी में यौन के लिए सेक्स (Sex) शब्द का प्रयोग किया जाता है। पाश्चात्य विचारवंत फ्राइड ने यौन समस्या पर अपने विचार व्यक्त किये है। वास्तव में काम समस्या मानव की मुलभूत समस्या है। काम की मूलभूत प्रवृत्ति मानव में होने के कारण काम समस्या यह एक मानव जगत की बहुत ही भयानक समस्या बन गयी है।

अत: नाटककार ने 'सिन्दूर की होली' नाटक में दो नारी पात्रों के माध्यम से सेक्स समस्याओं को उपस्थित किया है। चंद्रकला और मनोरमा ऐसी ही नारीयाँ हैं, एक आदर्श को अपनाती है तो दूसरी यथार्थ को। चंद्रकला डिप्टी कलक्टर की इकलौती बेटी है। वह विवाहित रजनीकान्त के सौंदर्य एवं उसकी मुस्कान पर प्रथम दर्शन में ही उस पुरुष विशेष के प्रति यौनानुभूति जागृत होती है। अस्पताल में मरणासन्न रजनीकान्त के हाथों से अपनी माँग में सिन्दूर लगाकर सिन्दूर की होली खेलती है और वैधव्य को धारण करती है। यह उसकी अपनी अनुभूति समाज की दृष्टि से हेय होकर भी अपने प्रेम को प्रथम स्थान देती है और अंत में पिता के कर्म का यह प्रायश्चित समझकर वह घर छोड़ देती है।

मनोरमा बाल विधवा है। मनोरमा और मनोजशंकर एक-दूसरे की ओर आकर्षित है, किन्तु समाज की रेखाओं में कटिबध्द होने के कारण वे विवाह करने में असफल रहे हैं और सामाजिक आदर्श को उन्होंने अपना लिया है। इस तरह आज का आधुनिक समाज बुध्दिवादी चक्र में इस तरह जखड़ गया है कि वह अपनी उलझन में उलझता रहता है, जिनमें सबसे बड़ी समस्या

नारी या पुरुष का काम प्रमुख है। मनोरमा के शब्दों में - ''पुरुष का सबसे बड़ा रोग स्त्री है और स्त्री का सबसे बड़ा रोग है पुरुष।''[24] पुरुष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरुष नहीं रह सकते। यह तो प्रकृति का नियमही है। यौन समस्या चिंतन से मिश्रजी सामान्य तथा विवाह का अस्तित्त्व शरीर-धर्म तक ही सीमित रखते हैं, जब की प्रेम को आत्मा की वस्तु मानते हैं।

मुरारीलाल भी सेक्स भावना से पीड़ित है। अपनी बेटी से भी दो साल छोटी मनोरमा पर वे आसक्त हैं और मनोरमा के परिहास को सत्य बनाना चाहते हैं। वास्तव में काम की प्रवृत्ति प्रकृति की ही देन है लेकिन मनुष्य को उस पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। लेकिन इस पर अंकुश लगाना बहुत ही कठिन कार्य है।

इस तरह हिन्दी समस्या नाट्य के क्षेत्र में पं.लक्ष्मीनारायण मिश्रजी प्रथम नाटककार है, जिन्होंने काम की वैयक्तिक समस्या का विश्लेषण किया है। मिश्रजी ही काम समस्या के प्रमुख नाटककार है और उनका एक प्रमुख स्थान है। इस प्रकार मिश्रजी ने 'सिन्दूर की होली' नाटक के अंतर्गत चंद्रकला, मनोरमा, मुरारीलाल इन पात्रों की काम समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके अंत में उसका हल भी आदर्शवाद के रूप में किया है।

6.3.10 रिश्वतखोरी की समस्या -

अर्थलोलुपता की समस्या ही इस समस्या को जन्म देती है। मुरारीलाल पचास हजार रुपये रिश्वत लेकर रजनीकांत की हत्या करवा देते हैं। यदि वे यह रिश्वत नहीं लेते तो भगवन्तसिंह यह हत्या नहीं कर सकता था। किंतु उसने यह रिश्वत देकर कानून को अपने हाथ में ले रखा था। वे जानते हैं, यदि यह रिश्वत मैं नहीं लूँगा तो कोई दूसरा ले लेगा। यह सिलसिला चलता ही रहेगा और हत्याएँ होती रहेगी। जब इन्हें इस हत्या का जिम्मेदार समझने पर वे कहते हैं - ''मेरी वजह से नहीं माहिर ....। संसार में भलाई बुराई का भाव अब नहीं है। आज इसने दस हजार दिया है। दस-दस रूपया देकर यह गवाहों को बिगाड़ देता। एक हजार भी खर्च नहीं होता और यह छूट

जाता। आजकल का कानून ही ऐसा है।''[25]

परंतु यह रिश्वत उन्हें काफी महँगी पड़ती है। मनोज तो इन पैसों से विलायत न जा सका, जिसके लिए रिश्वत ली थी। मुरारीलाल चंद्रकला से मनोज के विवाह का प्रस्ताव करता है किन्तु चंद्रकला इस बात को अस्वीकार कर देती है। उसके मत से मनोज ने अपने पिता की हत्या का बदला चंद्रकला से लिया है। चंद्रकला स्वयं को पिता के कर्म का प्रायश्चित घर छोड़ जाने का निश्चय करती है। तब मुरारीलाल चारों ओर से असहाय हो जाते हैं। उन्हें अपने कर्मों का फल 'कर्म-प्रतिफल न्याय सिध्दांत' नुसार ईश्वर से मिलता है।

इसी प्रकार मिश्रजी ने मुरारीलाल जैसे उच्चपदीय अधिकारों की रिश्वतखोरी को प्रस्तुत किया है। नाटककार ने इस समस्या के माध्यम से बताया है कि मनुष्य को बुरे कार्य नहीं करना चाहिए। जैसा वह कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। आज की वर्तमान समाज में किस तरह रिश्वत के बल पर मनुष्य ही मनुष्य को खा जाता है और इससे कितनी भयंकर समस्याएँ उत्पन्न होती है यह स्पष्ट करना मिश्रजी का उद्देश्य रहा है।

6.4 'संन्यासी' नाटक की समस्याएँ :-

प्रस्तावना -

सन 1927 में लिखा मिश्रजी का 'संन्यासी' प्रथम समस्या नाटक है। तीन अंकों में लिखा गया इस नाटक की मूल समस्या काम की है, जिसे मिश्रजी ने चिरंतन नारीत्व की समस्या कहा है। 'संन्यासी' इस नाटक में मिश्रजी ने सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण कर उनका बौध्दिक समाधान व्यक्त किया है। इस नाटक में जो समस्याएँ आयी है वह निम्न प्रकार से

1. सेक्स एवं विवाह समस्या पर आश्रित समस्या
2. अनमेल विवाह की समस्या

3. चिरन्तन नारी की समस्या
4. बुध्दिवाद की समस्या
5. वर्तमान शिक्षा पध्दति : समस्या
6. राजनीतिक समस्या

6.4.1 सेक्स एवं विवाह समस्या पर आश्रित समस्या -

सेक्स जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। वास्तव में सेक्स समस्या मानव की मूलभूत समस्या है। सेक्स की मुलभूत प्रवृत्ति मानव में होने के कारण यह समस्या मानव जगत की बहुत ही भयानक समस्या बन गयी है। मिश्रजी पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव होने से उनके नारी पात्र यौन समस्या के रूपमें मिलते है। इनके नाटकों में चंद्रकला, मनोरमा, आशावादी, मालती आदि नारी पात्र यौन समस्या के कारण ही प्रेम की ओर आकर्षित होती हैं। किन्तु प्रेम में असफल होने पर या विवाह न होने पर इस द्वंद्व को प्रस्तुत करती है। इसलिए मिश्रजी की रचना के बारे में सिसौदिया लिखते हैं - ''किसी रचना में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत सह शिक्षा के प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी' न हो पाने से विवाह का द्वंद्व प्रस्तुत करते हैं।''[26] सेक्स समस्या चिंतन से मिश्रजी सामान्य तथा विवाह का अस्तित्व शरीर-धर्म तक ही सीमित रखते है, जब की प्रेम को आत्मा की वस्तू मानते है। इसलिए उनकी मान्यता है कि पतित्व एक ही हो सकता है किन्तु प्रेमी अनेक हो सकते है। वास्तव में सेक्स की प्रवृत्ति प्रकृति की देन ही है लेकिन मनुष्य को उस पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। लेकिन इस पर अंकुश लगाना बहुत ही कठिन कार्य है। अत: यह सारे विश्व की समस्या है। इसी बारे में सावित्री स्वरूप लिखती है - '' यह समस्या विश्व की एक व्यापक समस्या है।''[27] फ्रायड़ के अनुसार जीवन के सभी व्यापारों में विद्यमान रहती है। वैसे तो काम वासना एक व्यक्तिगत विषय है, परंतु विवाह की परंपरा एवं नियम रुढ़िवादी होने के कारण आधुनिक वातावरण में पले युवक युवतियों को उनसे टक्क़र लेनी पड़ती है।'' इस प्रकार यौन

भावना ही मनुष्य की समस्त मनोविकारों का केन्द्र होता है। हर एक व्यक्ति में सेक्स की प्रवृत्ति होती ही है।

मिश्र जी अपने 'संन्यासी' नाटक में सेक्स की समस्याओं को चित्रित किया है। इस नाटक के प्रमुख पुरुष पात्र है विश्वकान्त और प्रमुख नारी पात्र है मालती। वे एक ही कॉलेज में पढ़ते थे। वे एक दूसरे से प्यार करते है और एक-दूसरे को चाहते भी है। रमाशंकर उनके प्राध्यापक है। इन दोनों का प्यार जानते हुए भी वे मालती पर आसक्त है। वे कूटनीति से विश्वकान्त को रिस्टिकेट करते है। विश्वकान्त समाजसेवा के लिए दूर चला जाता है और अंत मे मालती प्राध्यापक रमाशंकर से विवाहबध्द होती है। इसके द्वारा नाटककार ने यह दिखाया है कि इन दोनों के प्रेम का आधार रोमांस के अलावा कुछ नहीं था। फलत: वे अपने प्रेम में सफल नहीं हुए है। अपने प्रेम का स्वरुप स्पष्ट करते हुए मालती कहती है - ''जिस तरह भोजन या पानी के बिना काम नहीं चल सकता, उसी तरह स्त्री का पुरुष के बिना और पुरुष का स्त्री के बिना काम नहीं चल सकता यही प्रकृति की बात है। इसे इसी रुप में छोड़ देना चाहिए। जब जरुरत पड़े तब लेकिन रात-दिन उसी के चिन्ता में पड़े रहना और इसे प्रेम का नाम देना .... शायद यही पाप है और कुछ पाप है या नहीं, लेकिन यह तो जरुर पाप है। यह एक मर्ज है - किसी को जादा खाने का मर्ज होता है, तो किसी को जादा पानी पीने का और किसी को जवानी की इस बुराई का जिसे लोग प्रेम कहते है।''[28]

दूसरा चित्रण है किरणमयी और मुरलीधर का। किरणमयी एक शिक्षिता नारी है। तो मुरलीधर एक आजादी के आंदोलन के सिपाही है। उन दोनों का प्यार है। परन्तु परिस्थिति के कारण किरणमयी को एक वृध्द प्राध्यापक दीनानाथ से शादी करनी पड़ती है। उन दोनों के उम्र में काफी अन्तर है। इसी कारण मनचाही शारीरिक भूख वे मिटा नहीं सकते। इसी कारण उनके वैवाहिक जीवन में समझौता नहीं हो सकता। वैवाहिक जीवन के प्रति विद्रोह का निर्माण होता है। वे दु:खी होते है। इस प्रकार सेक्स के कारण ही उनके दाम्पत्य जीवन में बिघाड़ निर्माण होता है।

•

6.4.2 अनमेल विवाह की समस्या -

अनमेल विवाह की प्रणाली बहुत पहले से ही भारतीय समाज व्यवस्था में प्रचलित है। अनमेल विवाह की व्याख्या पति पत्नी में उम्र, वैचारिक, भावनिक तथा आर्थिक स्तर आदि में समानता न हुए किया हुआ विवाह अनमेल विवाह कहलाता है। अनमेल विवाह की समस्या सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण दोष है। जिसमें पुरुष नारी को अपनी वैयक्तिक मालमत्ता मात्र समझता है। अनमेल के मूल में दहेज प्रथा और आर्थिक निर्धनता प्रमुख हैं, परन्तु कभी-कभी प्रेम में अन्धा होकर भी ऐसे विवाह होते हैं। मात्र इस विवाह की परिणति किसी-न-किसी रूप में दुखद ही होती है। आधुनिक युग में भी अनमेल विवाह से ग्रस्त नारियाँ कमी नहीं है।

मिश्र जी ने 'संन्यासी' नाटक में इस समस्या का चित्रण किरणमयी और दीनानाथ के माध्यम से किया है। किरणमयी नव-यौवना साथ ही सौंदर्यवती भी है। वह दीनानाथ की पत्नी है। लेकिन दीनानाथ वृध्द है। वृध्द होने पर भी उनकी उपभोग की वासना चरमसीमा पर है। लेकिन किरणमयी का तन मन उनके साथ नहीं लगता। किरणमयी के मतानुसार दीनानाथ को देखकर उन्हें पिताजी की याद आती है। किरणमयी दीनानाथ से बिल्कुल प्रेम नहीं करती है। किरणमयी ने दीनानाथ से सिर्फ विवाह किया है। वह मन से उन्हें नहीं चाहती है। दीनानाथ उसके साथ हमेशा हँसी मजा करते रहते है तथा शारिरिक वासनाओं की पूर्ति हमेशा करना चाहते है। किरणमयी की अवस्था काफी जवानी की है। वह यह नहीं चाहती कि दीनानाथ ने उसके मन की इच्छा पूरी करे। रात-दिन उनके मन की तथा शरीर शांति के लिए दीनानाथ पीछे पड़े रहते है। इसी कारण किरणमयी अपनी अनिच्छा व्यक्त करती है। उन दोनों के उम्र में काफी अंतर है। किरणमयी उनसे इतनी उब जाती है और एक दिन कहती है - ''फिर तुम दिन रात कोई दो घंटा इसके लिये नियत कर लो।''[29] किरणमयी मुरलीधर के प्रभाव में आकर खद्दर पहनने से दीनानाथ किरणमयी को रोकता

है, परन्तु युवा पत्नी वृध्द की उतनी ही अधिक अवहेलना करती हुई कहती है - ''जो मजदूर बुढ्ढा नहीं होता तो बिना किसी शान से सुखी रहती।''[30] वृध्द पुरुष और युवा नारी का सम्बन्ध प्राकृतिक दृष्टि से अस्वाभाविक है। किरणमयी भी अपने सम्बन्ध को कृत्रिम समझती है, परन्तु जीवन व्यतीत करने के लिए वह परिस्थितियों से समझौता करती है। वह दीनानाथ से कहती है - ''तुम इधर-उधर मिस और मेमों से मिला करते रहो। मुझे भी अपने मित्रों से मिलने दो।''[31] दीनानाथ भी उसे स्त्री-पुरुष बनकर रहने के स्थान पर मित्र बनकर रहने की स्वीकृति दे देता है।

इस प्रकार दोनों की उम्र में काफी अन्तर होने की वजह से ही अनमेल विवाह की समस्या उपस्थित होती है।

6.4.3 चिरन्तन नारी की समस्या -

'संन्यासी' नाटक की प्रधान समस्या चिरन्तन नारीत्व की है। ''चिरन्तन नारीत्व की समस्या अर्थात नारी की प्रकृति का वास्तविक स्वरूप, स्वच्छंद प्रेम, जिसमें नारी स्वातंत्र्य की दुहाई दी जाती है अथवा समाजानुमोदित मर्यादित विवाह, जिसमें सामाजिक मर्यादाओं के अनुरुप नारी को अपने मन की अपेक्षा समाज की इच्छा के अनुकूल समर्पण करना पड़ता है।''[32] आज के वर्तमान युग की प्रमुख समस्या है नारी-स्वातंत्र्य । आज की आधुनिक नारी शिक्षित एवं बुध्दिवादी है। प्रारंभ से ही पुरुष ने नारी को दासता में रखकर उस पर अत्याचार किए हैं। आज की नारी इससे छुटकारा पाकर स्वतंत्रता के वातावरण में जीवन निर्वाह करना चाहती है।

मिश्र जी ने आधुनिक नारी की समस्या को अधिक सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इसमें नारी जीवन के दो पहलू दिखाई पड़ते है। एक में नारी के स्वच्छंद प्रेम को महत्त्व दिया जाता है और दूसरे में उसे समाज की इच्छा के अनुकूल अपनी भावनाओं को तिलांजली देनी पड़ती है। इस समस्या का विवेचन करने के लिए नाटककार ने दो पात्रों की सृष्टि की है। किरणमयी और मालती इस नाटक के आधुनिक नारी पात्र है।

मालती उमानाथ की एक मात्र सन्तान है, जिसके पास पर्याप्त सम्पत्ति है। अपने विद्यार्थी जीवन में वह विश्वकान्त से प्रेम करने लगती है। कालेज के एक प्रोफेसर रमाशंकर इससे ईर्ष्या करते हैं, लेकिन वह चिन्ता नहीं करती। विश्वकान्त के लिए वह अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिए तैयार है, परन्तु विश्वकान्त उसकी भाँति सशक्त नहीं। वह मालती को घर सुलाने के कारण पिता से प्रताड़ित होता है तथा मुरलीधर द्वारा प्रेरित होकर वंश के लिए आत्म-बलिदान करने का संकल्प कर लेता है। मालती उसकी दुर्बलताओं से अवगत होकर उससे विवाह न करने का निश्चय करती है। वह विश्वकान्त को केवल प्रेम करने की चीज समझकर प्रतिहिंसा के वशीभूत होकर प्रोफेसर रमाशंकर से विवाह कर लेती है। रोमान्टिक प्रेम से उसका मन भर गया है। वह विश्वकान्त के साथ रोमांटिक प्रेम करके देख चुकी है, वह असफल हुआ। इसी कारण रमाशंकर के साथ विवाह करके वह यह समझती है कि ''आज चिरन्तन नारीत्व ने पुरुष की अहमान्यता पर विजय पायी है।''[33]

'संन्यासी' नाटक का दूसरा नारी पात्र है किरणमयी। किरणमयी मुरलीधर से प्रेम करती थी। पर उसका विवाह एक वृध्द प्रोफेसर दीनानाथ से हो जाता है। वह अपने वृध्द पति से असन्तुष्ट है। किरणमयी स्पष्ट शब्दों में कहती है कि हमारा तुम्हारा नाता कृत्रिम है, बनावटी है। बेजोड़ चीजों का मिलना स्वाभाविक नहीं होता। वह मुरलीधर से प्रेम करती है और चाहती है कि मुरलीधर उसे स्वीकार कर ले। परन्तु मुरलीधर विवाह को देशसेवा के मार्ग में बन्धन समझता है। इसलिए उसे निराश होना पड़ता है। मुरलीधर के मृत्यू से पहले वह अपने पति को इस प्रेम-प्रसंग के बारे में सब कुछ बता देती है। किरणमयी केवल समाज के साथ समझौता करने के लिए दीनानाथ के साथ रहना स्वीकार करती है। मानसिक रुप से वह अपने आपको मुरलीधर की विधवा मानती है। मालती के ठीक विपरीत उसने अपने विवाहित जीवन को प्रेम की वेदी पर बलि चढ़ा दिया है। इस प्रकार नाटककार नाटक में चिरंतन नारी की समस्या को प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

6.4.4 बुध्दिवाद की समस्या -

'संन्यासी' समस्या नाटक का आधार बुध्दिवाद एवं तर्कशीलता है। इस नाटक के सभी पात्र बुध्दि और तर्क का आश्रय लेते हैं। मिश्रजी ने भी नाटक बुध्दिवाद से प्रेरित होकर लिखे है। मिश्रजी के बुध्दिवाद में भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं है। क्योंकि इसमें तीक्ष्ण सत्य होता है। बौध्दिक विश्लेषण की प्रवृत्ति उनके नाटकों में दिखाई देती हैं। श्यामनंदन प्रसाद सिंहजी लिखते हैं - ''मिश्र जी बुध्दिवादी कलाकार है और उन्होंने बुध्दिवाद पर अपने नाटकों का निर्माण किया है, जहाँ समाज और व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास इमानदारी के साथ किया गया है।''[34]

'संन्यासी' नाटक के अन्तर्गत मालती और किरणमयी दोनों शिक्षित, बुध्दिवादी पात्र हैं। मालती विश्वकान्त से बहुत ही प्यार करती है; जो उनके कॉलेज का सहपाठी है। कालेज के एक प्रोफेसर रमाशंकर भी उससे प्यार करते है, किन्तु वह इसकी चिन्ता नहीं करती। विश्वकान्त के लिए वह अपना सर्वस्व अर्पित करने को तैयार है परन्तु विश्वकान्त के व्यक्तित्त्व की दुर्बलताओं से परिचित होने पर वह अपना मार्ग बदल देती है। उसके चरित्र में विश्वकान्त-सी दुर्बलता नहीं है; वह निर्णय करना जानती है और उसकी व्यावहारिक बुध्दि बहुत ही तीव्र है। जब विश्वकान्त उसे बताता है कि वह विवाह न करने की शपथ ले चुका है तो वह उसके सामने गिड़गिड़ाती नहीं।

विश्वकान्त को जब वह अपनी ओर से विरक्त पाती है तो प्रोफेसर रमाशंकर से विवाह कर लेती है। विवाह के प्रति उसका दृष्टिकोण अत्यन्त बौध्दिक है। वह रमाशंकर से कहती है - ''हम लोग प्रेम नहीं करेंगे विवाह करेंगे। समझदारी के साथ एक-दूसरे का ख्याल करेंगे।''[35]

रोमांटिक प्रेम से उनका मन भर गया है। वह विश्वकान्त के साथ रोमांटिक प्रेम करके देख चुकी है, वह असफल हुआ। इसी से वह प्रोफेसर रमाशंकर से ऐसा प्रेम चाहती है, ''जिसे आजकल दुनिया में समझदारी के साथ निबाहा जा सके।''[36] वह कहती है - '' मुझे जरूरत है किसी पुरुष की मेरे साथ रहने के लिए - अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए। इसलिए मैंने

रमाशंकर को पसंद किया। 'विश्वकान्त प्रेम करने की चीज है, विवाह करने की नहीं।''[37]

विवाह के पश्चात् मालती जब विश्वकान्त को मिलने के लिए जाती है; तब अस्थिर चित्त विश्वकान्त का हृदय फिर डोल जाता है; किन्तु मालती उसे उँचे आदर्श की प्राप्ति के लिए भूल जाने के लिए कहती है और पुराने रोमांटिक प्रेम को भूलकर कर्तव्य पथ पर चलते रहने की प्रेरणा देती है। विश्वकान्त भी मालती के शब्दों से प्रभावित होकर संन्यास ग्रहण कर लेता है। मालती उसे देवता के रूप में स्वीकार कर धन्य होती है। चंद्रकला बुध्दिवादी होने के कारण यथार्थ को महत्त्व देती है।

किरणमयी 'संन्यासी' नाटक की दूसरी नारी पात्र है। वह मुरलीधर से प्रेम करती है किन्तु दुर्भाग्यवश उसका विवाह उसके पिता की आयु के ही एक वृध्द प्रोफेसर दीनानाथ से हो जाता है। विवाह के पश्चात वह मुरलीधर को न भूल सकती है; न दीनानाथ को पति के रूप में स्वीकार कर सकती है। निष्कर्ष यह है कि किरणमयी का जीवन सामाजिक मर्यादा की दुश्चक्र में फँसकर विवश हो गया है। वह भी विवश होकर सामाजिक परिस्थिति का लाभ उठाती है। उसके माध्यम से नाटककार दो पाटों के बीच में फँसी हुई नारी का चित्र अंकित करने में सफल हुआ है। किरणमयी एक बुध्दिवादी भौतिकतापरक दृष्टिकोण से युक्त नारी के रूप में चित्रित की गई है। वृध्द दीनानाथ से विवाह करना और उसे उँगली पर नचाते हुए मुरलीधर से अपनी क्षुधा पूर्ति करना उसके प्रमाण हैं।

इस प्रकार इसमें आधुनिक बुध्दिवादिता और जीवन के प्रति उपयोगितावादी व्यावहारिक दृष्टिकोण होने के साथ-साथ प्रेम की भावुकता भी विद्यमान है। वर्तमान समस्याओं के बौध्दिक समाधान खोजने की दिशा में प्रयासों का चित्रण इस नाटक में हुआ है।

6.4.5 वर्तमान शिक्षा - पध्दति समस्या -

सर्वप्रथम 1929 में लिखे गये सामाजिक नाटक 'संन्यासी' में मिश्रजी ने आधुनिक शिक्षा-प्रणाली से अपनी असहमति प्रकट की है। हमारी आज की शिक्षा प्रणाली भी उस काल की शिक्षा-प्रणाली का ही विकसित रूप है। इसलिए कहा जा सकता है कि नाटक में उपस्थित शिक्षा-प्रणाली की समस्या आज भी वर्तमान है। इस संदर्भ में उन्होंने कहा है - ''शिक्षा की इस रीति को मैं पसन्द नहीं करता। यह व्यक्तित्व का नाश कर मनुष्य को मशीन बना देती है। शिक्षा की इस प्रणाली में अच्छे और बुरे मस्तिष्कवाले सभी एक साथ जोत दिये जाते हैं। फल अच्छा नहीं होता। संस्कार-चरित्र बल किसे कहते हैं, इसका पता इस शिक्षा में नहीं चलता, शेक्सपियर के पढ़ लेने बाद मैकबैथ बन जाना आसान हो उठता है।''[38]

सहशिक्षा का मिश्रजी ने विरोध इन शब्दों में किया - ''इस शिक्षा में जो सबसे बढ़कर बुरायी है, वह अब आयी है और वह है लड़के और लड़कियों का साथ पढ़ना। यह रीति पश्चिम से आयी है, किन्तु अपने साथ वह सहिष्णु ता नहीं ला सका जो पश्चिम में उसका मूल तत्त्व है। यह हो, अच्छा है; किन्तु उसके साथ वह सहिष्णुता भी रहनी चाहिए।''[39] कॉलेज में छात्र-छात्राओं को एक साथ पढ़ने पर क्या होता है यह 'संन्यासी' में छात्रों के वार्तालाप के रूप में इस प्रकार प्रकट किया गया है ...''इस बार मिसेज गुप्ता के ऊपर गेंदे का फूल पड़ा .... दूसरी बाद कदम्ब का पडेगा। दर्जे में जिस ओर परियाँ बैठेंगी, लड़के देखेंगे ही। मुझे तो स्वयं उन बेचारों पर दया आती है जो बिना किसी लाभ के प्यासी आँखों से उनकी ओर देखा करते हैं।''[40]

मिश्र जी 'संन्यासी' नाटक में शिक्षा के क्षेत्र में चारित्रिक पतन केवल छात्र-छात्राओं में नही दिखाया गया है, कालेजों के प्राध्यापक भी उतने ही (कदाचित छात्रों से अधिक) गिरे हुए हैं। 'संन्यासी' का प्रोफेसर रमाशंकर भी मालती पर 'डोरे डालता है' और अन्त में उससे विवाह भी कर लेता है।

इस प्रकार मिश्र जी ने 'संन्यासी' नाटक में आधुनिक समाज में सह-शिक्षा की विकसित होती हुई प्रवृत्ति और उत्पन्न स्वच्छंदता के परिवेश में उगती हुई समस्या दिखायी है। साथ ही आज की शिक्षा पध्दति पर मिश्रजी ने व्यंग्य किया है।

6.4.6 राजनीतिक समस्या -

मिश्रजी ने 'संन्यासी' नाटक में ऐसे राष्ट्रवादी पात्रों निर्माण किया गया है, जिनके संघर्षों के माध्यम से तत्कालीन अनेक राजनीतिक समस्याएँ प्रस्फुटित हुई हैं। महात्मा गांधी की राजनीतिक मान्यताओं का अनुसरण करते हुए वे पात्र अंग्रेजी सरकार के विरुध्द क्रांति-रत होते हैं और जनता में सच्ची राजनीतिक चेतना जगाने का उपक्रम करते हैं। 'संन्यासी' में मुरलीधर और विश्वकान्त इसी वर्ग के पात्र हैं, जो अंग्रेजी सरकार की कूटनीति सुलभ राजनीतिक विद्रुपता ओं के आलोचक है, एवं उसके विरुध्द लड़ते हुए अपना बलिदान करते हैं। मुरलीधर एक संपादक है और राष्ट्रवादी सिपाही भी। अंग्रेजी शासन के विरुध्द वह क्रांतिकारी लेख लिखता है, जिसके द्वारा जनता में नई राजनीतिक चेतना जगाता है। समसामायिक राजनीतिक समस्याके सम्बन्ध में मुरलीधर का कथन है - "जब तक हम लोगों के साथ जनता की कोई सुसंगठित शक्ति नहीं है, तब तक एक-दूसरे की सहायता न करने से हम लोग कहीं के न होंगे। नौकरशाही इस बात पर तुल गई है कि इस अभागे देश में स्वतंत्र विचारों का जन्म न हो सके।"[41] इसी नौकरशाही के विरुध्द लेख प्रकाशित करने के अभियोग में मुरलीधर को जेल जाना पड़ता है, जहाँ की यातना से वह क्षयग्रस्त होकर मर जाता है। मुरलीधर की दृष्टि में नौकरशाही देश की सबसे बड़ी अराष्ट्रीय एवं अप्रतंत्रात्मक प्रवृत्ति है, जो अंग्रेजी शासन की रीढ़ बनी हुई है।

"मुरलीधर - यह कानून टिका भी है आप ही लोगों के बल पर। यदि आप सभी लोग जितने हिन्दुस्तानी नौकरियों में हैं, केवल एक दिन के लिए सरकार से नाता तोड़ लें तो फिर ..

मि. राय - तब यह सरकार नहीं रहेगी, लेकिन सभी लोग हम में नैतिक बल नहीं है।''[42]

इस प्रकार बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों का सुख भोगनेवालों ने देश के स्वतंतता संग्राम में योग नहीं दिया, प्रत्युत राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलने का ही उपक्रम किया। किन्तु दमन से विचलित न होते हुए, स्वतंत्रता संग्राम के सिपाही जनता के बीच राष्ट्रवादी राजनीतिक चेतना भरते रहे। उन्होंने अंग्रेजी शासन की कूटनीतियों का निर्भय होकर खण्डन किया तथा राष्ट्र को राजनीतिक नव-जागरण का सन्देश दिया। मि.राय के प्रति कहे गए मुरलीधर के निम्नलिखित कथन में उस युग के राष्ट्रभक्त शहीदों की आत्मा मुखरित है -

''मैं जेल से निकाल दिया जाऊँ इसके लिए सरकार से माफी नहीं माँग सकता ... गोरों की प्रभुता हमारे जीवन की जड़ में टाँगी चला रही है। आप भी देख रहे हैं .... मैं भी देख रहा हूँ ... आप बोल नहीं सकते, मैं बोल सकता हूँ। आयरलैण्ड कीतरह वह दिन दूर नहीं जब आपको भी बोलना पड़ेगा।''[43]

मुरलीधर के उपक्रमों के माध्यम से समसामायिक राजनीति का एक नवीन आवश्यकता को भी व्यंजित किया गया है; अंग्रेजों की राजनीति के शिकार भारत ही नहीं, एशिया के कई और देश भी थे, अत: इस आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था कि 'एशियाई संघ' बनाकर अंग्रेजी सरकार से युध्द किया जाय। विश्वकान्त का राजनीतिक आन्दोलन इसी दिशा में एक प्रयत्न है।

अंग्रेजी शासनकी नींव को अहिंसात्मक संग्राम के द्वारा हिला देने के उपक्रम की दिशा में खादी धर्म की उद्भावना राष्ट्रवादी राजनीति की एक रचनात्मक उपलब्धि थी। इस धर्म के प्रति आस्था राष्ट्रीयता का पर्याय बन गयी थी। खादी को समस्त जटित राजनीतिक समस्याओं के समाधान का आधारस्तंभ माना जाने जगा था। 'संन्यासी' में खादी धर्म के राजनीतिक महत्त्व की भी विवेचना हुई है :

''दीनानाथ - साड़ी बदलो, मैं इस खादी धर्म से घृणा करता हूँ।

किरणमयी - इस युग में कोई भी भला मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष खादी धर्म से घृणा नहीं कर सकता। संसार इसकी उपयोगिता समझ रहा है। करोडों गरीबों की भूख इससे मिट सकती है। तुम्हारा देश स्वाधीन हो सकता है।''[44]

खादी-धर्म के प्रति जनता के विश्वास का कुछ ढोंगी नेताओं ने अनुचित लाभ भी उठाया। वे चुनाव के समय में तो खद्दर पहन लेते थे और बाकी समय में विदेशी मिलों के बने कपड़े का उपभोग किया करते थे। यह उनकी राजनीतिक प्रवंचना थी। इससे राष्ट्रवादी राजनीति की लक्ष्य-पूर्ति में पर्याप्त व्यवधान पड़ा।

संक्षेप में इस नाटक में देश की समकालिन राजनीतिक समस्याओं को आधारभूत विषय बनाकर रचे गऐ हैं।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रुप में हम कह सकते है कि लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाटक 'सिन्दूर की होली' एक समस्यात्मक रचना है। इस नाटक का प्रधान उद्देश सत्य की खोज करना हैं। मिश्रजी पर पाश्चात्य नाट्यकलाओं का प्रभाव होते हुए भी - जैसे बौद्धिकता, आधुनिकता आदि होते हुए भी भारतीय संस्कृति को छोड़ा नहीं है। इस नाटक का कथानक तीन अंकों में विभाजित है।

इस नाटक में चिरंतन एवं आधुनिक नारी की समस्या और विवाह की समस्या का चित्रण प्रमुखत: यथार्थ रुप से हुआ है। मिश्रजी नारी को दिमाग से बुध्दिवादी मानते हैं किंतु हृदय से एक भारतीय भावुक नारी समझते हैं। इसीलिए इनके इस नाटक में एक ओर बौद्धिक चित्रण झलकता है, तो दूसरी ओर हृदयगत भावुकता भी। नारी के अंर्तमन में उठनेवाले द्वंद्व, प्रेम, विधवा-विवाह तथा सेक्स आदि समस्याओं का विश्लेषण करते हुए सामाजिक कुरीतियों, अन्यायपूर्ण

तथा उच्चपदीय लोगों के काले-कारनामों का भी चित्रण नाटककार ने यथार्थ रुप से किया है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक, शासकीय, न्याय-विधि, सेक्स, विवाह एवं वैधव्य से संबंधित जो समस्याएँ ली हैं, उनपर मिश्र जी ने तार्किक शैली में बौध्दिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रकृतिवादी दृष्टि से विचार किया है।

मिश्र जी ने अपने 'संन्यासी' में भी अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। प्रमुख रुप से इस नाटक में तीन समस्याएँ है - विवाह एवं प्रेम की समस्या, देश के स्वातंत्र्य की समस्या, एशियाई संघ की स्थापना की समस्या। इसके साथ ही कुछ गौण समस्याएँ भी हैं जैसे - अनमेल विवाह, अवैध संतान की समस्या आदि।

इस प्रकार मिश्रजी ने समस्या-मूलक नाटकों की शैली को पूर्णत: अपनाया है तथा बौध्दिक दृष्टिकोण से समस्याओं पर वाद-विवाद नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने समस्याओं पर तर्कपूर्ण आलोचना की है। उनका मत है कि बदलते हुए युग के साथ हमें बदलना चाहिए। मिथ्या भावुकता तथा रोमांस की ओर से ध्यान हटाकर हमें स्वतंत्र व्यक्तिगत साधना की ओर झुकना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ. विमला भास्कर, हिन्दी में समस्या साहित्य, पृ.9
2. सं. नगेन्द्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश - 23, पृ.568
3. सं.सत्यप्रकाश वल्लभप्रसाद मिश्र, मानक अंग्रेजी-हिन्दी-कोश, पृ.1071
4. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.5
5. वही, पृ.4
6. वही, पृ.28
7. डॉ. रामकुमार गुप्त, आधुनिक हिन्दी और नाट्यकार, पृ.119
8. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.78
9. वही,पृ.103
10. डा. बच्चनसिंह , हिन्दी नाटक, पृ.163
11. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.101
12. वही, पृ. 51
13. वही, पृ. 67-68
14. डॉ. उमाशंकर सिंह, हिन्दी के समस्या नाटक, पृ.227
15. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.6
16. वही, पृ.27
17. वही, पृ.57
18. वही, पृ.101
19. वही, पृ.72
20. वही, पृ.70
21. वही, पृ.74
22. वही, पृ.36-37

23. वही, पृ.80

24. वही, पृ.54

25. वही, पृ.27

26. डॉ. मलखानसिंह सिसोदिया, आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक एवं नायिका की परिकल्पना, पृ.235

27. डॉ. सावित्री स्वरुप, नव्य हिन्दी नाटक, पृ.237

28. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.180

29. वही, पृ.54

30. वही, पृ.106

31. वही, पृ.107

32. डा.रामकुमार गुप्त, आधुनिक हिन्दी और नाट्यप्रकार, पृ.119

33. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.169

34. श्यामनंदन प्रसाद सिंह, हिन्दी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा, पृ.514

35. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.168

36. वही, पृ.168

37. वही, पृ.169

38. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, भूमिका, पृ.12

39. वही, पृ.13

40. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.80

41. वही, पृ.73

42. वही, पृ.154

43. वही, पृ.156

44. वही, पृ.110